डॉ. शशि भूषण
अतिथि सहायक प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग
एस.आर.ए.पी. कॉलेज,
बारा चकिया।

'पूँजीवादी समाज के प्रति' कविता का कथ्य

यह संबोध-गीत की शैली में रचित कविता है। इसमें मुक्तिबोध का प्रगतिवादी स्वर मिलता है। कवि ने यहाँ सम्पन्न वर्ग के तौर-तरीकों और 'बूर्जुआ' सौंदर्यशास्त्र का विरोध किया है।

'पूँजीवादी समाज के प्रति' मार्क्सवाद से प्रभावित मुक्तिबोध की प्रगतिवादी चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाली उनकी एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इस कविता में पूँजीवादी समाज-व्यवस्था के प्रति कवि का तीव्र असंतोष और आक्रोश व्यक्त हुआ है।

भारतीय समाज का क्रमिक विकास मुक्तिबोध को भली-भाँति ज्ञात था। किन्तु वर्तमान समाज की समस्याओं पर विचार करते हुए अथवा उनसे जूझते हुए मनुष्य के सर्वांगीण विकास की मार्ग-बाधा के रूप में उन्हें विषमतापूर्ण समाज-व्यवस्था दिखायी दी थी जिसके प्रति अपना तीव्र असंतोष प्रकट करता हुआ कवि कहता है कि-

"इतने प्राण, इतने हाथ, इतनी बुद्धि
इतना ज्ञान, संस्कृति और अंतः शुद्धि
— — — — — —
इतना गूढ़ इतना गाढ़, सुंदर जाल-
केवल एक जलता सत्य देने टाल।"

प्राचीन भारतीय समाज में मनुष्य परम्परावादी होकर भी आत्मनिर्भर था और अनुशासित रहकर अपना विकास करता था। अपनी संस्कृति के अनुरूप ही उसका जीवन आदर्श होता था। उसके पास दिव्य ज्ञान था और तीव्र बुद्धि थी उसके पास धन-बल था। ईश्वरी भक्ति में उसकी गहरी आस्था थी। अपने जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण व्यवहारिक था। प्राचीन कला साहित्य भी समृद्ध था। उसमें जितना ढोंग था उतना ही लोगों को निर्बन्ध भोग ग्राह्य था। अन्तः शुद्धि पर बल सर्वाधिक बल दिया जाता था। गूढता और गाढ़े वाग्जाल से समन्वित तत्कालीन समाज-व्यवस्था लोगों को फाँसने वाला था। वह ज्वलंत सत्य को टाल देने का उपक्रम था जिससे तब की जनता का एक बहुत बड़ा वर्ग प्रभावित था।

किन्तु विदेशी हुकूमत के आने से समाज में नये-नये सामाजिक वर्गों का प्रादुर्भाव होने लगा। जमींदार उच्च, मध्य और निम्न किसान वर्ग, खेतिहर मजदूर, व्यवसायी और साहूकारों के वर्ग सामने आए। सामंतीय मूल्यों के साथ अब नये मूल्य समाज को रोगग्रस्त करने लगे। समाज में पूँजी के बढ़ते प्रभाव के साथ संयुक्त परिवार का ह्रास होने

लगा। इस पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति कवि न केवल असंतोष से भर उठता है, अपितु वह उसकी व्यर्थता सिद्ध करते हुए उसका ध्वंस भी चाहता है तभी तो वह कहता है कि-

"मेरे ज्वाल; जन की ज्वाल होकर एक
अपनी उष्णता से धो चलें अविवेक
तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।"

कवि यहाँ सर्वहारा संस्कृति के पक्षधर के रूप में दिखाई पड़ता है। आदिम साम्यवाद से औद्योगिक एवं पूँजीवादी संस्कृति तक की विकास-यात्रा उसकी दृष्टि में जनविरोधी है। शोषण पर आधृत और मानवता से विमुख अर्थव्यवस्था कला-साधना और काव्य-रचना को मुक्तिबोध घातक समझते हैं।